

सामाजिक न्याय की अवधारणा—एक परिचय

देवेन्द्र सिंह¹

¹शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ०प्र०, भारत

ABSTRACT

सामाजिक का सामान्य अर्थ समाज से संबंधित परिस्थितियों से है तथा 'समाज' का सामान्य अर्थ—मनुष्यों के विभिन्न पारस्परिक संबंधों की व्याख्या के रूप में लिया जाता है। समाज की इस व्याख्या के अन्तर्गत समाविष्ट पारस्परिक संबंध विविध प्रकार के होते हैं यथा—पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, संस्थागत आदि और इनमें से प्रत्येक प्रकार का संबंध क्षेत्र इस भाँति काम करता है कि वह बड़ी समाज व्यवस्था के अन्तर्गत स्वतः एक व्यवस्था या उप व्यवस्था निर्मित कर लेता है। इस प्रकार समाज एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न कोटि के सामाजिक संबंधों द्वारा निर्मित अन्तःसम्बन्धित उप व्यवस्थाएँ संघटित हैं। इस दृष्टि से सामाजिक शब्द का सामान्य प्रयोग सामाजिक विद्वानों में समाज व्यवस्था से संबंध रखने वाली स्थितियों के अर्थ में लिया जाता है, राजनीतिक, आर्थिक या किसी अन्य प्रकार के मानवीय संबंध को सामाजिक की परिधि के बाहर रखना अतर्कसंगत है, अतः समाज व्यवस्था अथवा उसकी विविध उपव्यवस्थाओं संबंधी सभी स्थितियाँ सामान्यतया 'सामाजिक' हैं।

KEYWORDS: न्याय, सामाजिक न्याय, भारतीय दर्शन,

सामाजिक न्याय एक युग्म शब्द है, जो दो विशेषणों से मिलकर बना है। सामाजिक और न्याय, इन दो शब्दों की प्रकृति की सामान्य विवेचना के आधार पर ही सामाजिक न्याय शब्द युग्म के प्रत्यय का अर्थ स्पष्ट करने के लिए सबसे पहले हम 'सामाजिक' शब्द की व्याख्या स्पष्ट कर रहे हैं—(जाटव, 1993)

सामाजिक शब्द को समझने के उपरांत 'न्याय' शब्द का अर्थ भी जानना आवश्यक है—

छः भारतीय दर्शनों में एक दर्शन 'न्याय' कहलाता है। इसमें 'वास्तविकता' का ज्ञान प्राप्त करने की विद्या को न्यायदर्शन की संज्ञा दी गई है। प्रसिद्ध व्याकरणशास्त्री 'पाणिनि' ने 'न्याय' को दो भागों में विभाजित किया है—

1. सांसारिक
2. सामाजिक,

जिन्हे क्रमशः 'प्राकृतिक' तथा 'यथार्थवादी' कहा जा सकता है। सांसारिक तथा प्राकृतिक स्तर को परिभाषित करते हुए कहा गया है— "न्याय नियन्त्रि संहरं यस्मिन्निन्" अर्थात् जो प्रारब्ध द्वारा नियन्त्रित है, जिसे नियति भी कहते हैं— सांसारिक न्याय के अन्तर्गत आता है और जो जीवित प्राणियों के पर लागू होता है। यह परिभाषा सांसारिक और दैवीय न्याय का द्योतक है। सामाजिक अथवा यथार्थवादी न्याय के संदर्भ में कहा गया है— "नियमेन इयते इति अर्थात् जो कानून द्वारा नियंत्रित हो उसे न्याय कहते हैं। इसी प्रकार न्याय को व्याख्यायित करते हुए "इण्टरनेशनल इन्साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज" में कहा गया है कि—

1. न्याय सामूहिक और व्यक्तिगत रूप में सामाजिक बदलाव कल्याण तथा सहायता पहुँचाने के कर्तव्य निश्चित करता है।

2. न्याय अपने विभिन्न निर्णयों में निष्पक्षता और सत्यता के पारस्परिक परिवर्तित अन्तःव्यक्तिगत आचरणों और विभिन्न आर्थिक श्रेणी के सदस्यों के केवल मौलिक अधिकारों की समानता ही नहीं, बल्कि राष्ट्रों, जातियों के मध्य भी सम्बद्ध कार्यसंबंधी सिद्धान्तों को सम्मिलित करता है।
3. न्याय का भावात्मक प्रकाशन उत्पीड़न के समस्त संवेगात्मक अविश्वास के रूप में होता है और इसका वास्तविक प्रकाशन स्वार्थ और क्रूरता के दोष स्थापित करने और उनका मुकाबला करने में होता है। (श्रीवास्तव, 2002)

इस प्रकार 'न्याय' शब्द का प्रयोग एक से अधिक अर्थों में किया जाता है। वास्तव में न्याय का मूल है— विवेक एवं उचित व अनुचित का ज्ञान। इसी परिप्रेक्ष्य में न्याय के स्वरूप में समय—समय पर परिवर्तन होता रहता है। यह अनुभव पूर्णता निराधार नहीं है कि आदिकाल में मनुष्य को जो भी उसकी ईच्छानुसार होता था उचित तथा न्यायसंगत प्रतीत होता था, परन्तु धीरे—धीरे जैसे यह सभ्यता विकसित होती गई और मनुष्य में यह भाव आता चला गया कि उसे दूसरों के हितों तथा अधिकारों का भी ध्यान रखना चाहिए। उसी बदलाव या विकास की मात्रा में न्याय का भी रूप बदलता गया। अभी बहुत समय नहीं बीता है, जब दुनिया में 'दास' बनाने की प्रथा प्रचलित थी और अब भी कहीं—कहीं यह कई रूपों में मिलती भी है। इसी प्रकार हमारे देश में भी वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों व शूद्रों के अधिकार में अन्तर था और हमारे स्मृतिकार इसे ही न्याय समझते थे। स्त्री तथा पुरुष के अधिकार भी समान नहीं थे, परन्तु अब यह माना जाता है कि मनुष्यों में वर्ण, लिंग, जाति, जन्मस्थान आदि के

भेद के आधार पर उसके नागरिक अधिकारों में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार सामाजिक और न्याय इन दोनों शब्दों की सामान्य विवेचना के आधार पर 'सामाजिक न्याय' के प्रत्यय का अर्थ समझने में सुविधा हो जाती है, क्योंकि 'न्याय' पद का प्रयोग, जो पूर्ण या आंशिक रूप से समाज व्यवस्था या उसकी उपव्यवस्थाओं को व्यवस्थित करने के लिए किया जाता है—'सामाजिक न्याय' है, जिसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि— समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं यथा— भोजन, वस्त्र, मकान आदि की पूर्ति हो। प्रत्येक व्यक्ति को विकास के उचित अवसर मिले। व्यक्ति का व्यक्ति के द्वारा शोषण रोका जाय और आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो।

इस प्रकार आधुनिक विश्व में 'सामाजिक न्याय' की अवधारणा एक प्रगतिशील विचारधारा है। विश्व के अधिकांश देशों ने इसे अपनी राजनीतिक व्यवस्था का आधारभूत सिद्धान्त बनाया है। जब से राज्यों ने लोक कल्याणकारी स्वरूप ग्रहण किया है तब से उन्होंने सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में अपनी नीतियों का निर्धारण करना प्रारम्भ किया है। सामाजिक न्याय का प्रश्न सामाजिक समानता तथा अधिकारों से संबंधित है। सामाजिक व्यवस्था को यहाँ समग्र दृष्टि से देखा जाता है तथा सामाजिक व्यवस्था के लाभों को प्रत्येक वर्ग एवं प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाने का प्रयास किया जाता है तथा इसी सन्दर्भ में किसी व्यवस्था के न्यायपूर्ण या अन्यायपूर्ण होने की बात की जाती है।

सामाजिक न्याय का अर्थ है— समाज में भेदभाव का न होना तथा समाज में प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों को अपने विकास उन्नति व अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उन सभी मूलभूत आवश्यकताओं यथा—स्वतंत्रता, आर्थिक विकास, सामाजिक प्रतिष्ठा गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार आदि को प्राप्त करने के समुचित अवसर उपलब्ध होना अर्थात् समाज के सभी वर्गों को समस्त प्रकार के उचित अवसरों का समान वितरण, अतः समाज में एक न्यायपूर्ण व्यवस्था ही 'सामाजिक न्याय' है।(पाठक,2008)

समाज में अनेक वर्ग हैं, जो बराबर अधिकार नहीं रखते हैं। इसका कारण समाज में फैली विषमताएँ हैं। ये विषमताएँ अत्यन्त व्यापक हैं और मानव के आरम्भिक अवसरों को भी प्रभावित करती हैं। इन विषमताओं के कारण समाज अमीर एवं गरीब वर्गों में बंट जाता है। विधिक तथा राजनीतिक न्याय के परिवेश में ये विषमताएँ बढ़ती जाती हैं, क्योंकि 'विधिक न्याय' इस बात पर बल देता है कि कानून की दृष्टि में सभी बराबर हैं और बिना किसी भेदभाव के सभी व्यक्तियों को कानून का संरक्षण मिलना चाहिए। इसी प्रकार राजनीतिक न्याय के अनुसार बिना किसी भेदभाव के सत्ता तक प्रत्येक व्यक्ति की पहुँच होनी चाहिए, किन्तु सामाजिक न्याय के विचारकों के अनुसार विधिक तथा राजनीतिक न्याय का विचार उत्तम है, किन्तु यह अपर्याप्त है जब तक समाज में आर्थिक विषमताएँ हैं, अमीर—गरीब के मध्य चौड़ी खाई है तथा समाज अगड़ों तथा पिछड़ों में विभाजित है। तब तक विधिक तथा

राजनीतिक न्याय के शुभ परिणाम नहीं निकल सकते, क्योंकि ऐसे परिवेश में अगड़ वर्ग इन अवसरों का लाभ उठाते हैं तथा पिछड़ा वर्ग इन अवसरों के लाभों से वंचित रह जाता है। अतः इस संदर्भ में सामाजिक न्याय को प्रतिष्ठित करने के लिए समाज के मूल ढाँचे में व्याप्त इन विषमताओं की ओर ध्यान दिया जाय और उनका उन्मूलन किया जाय तथा यह तभी संभव है, जब पिछड़े तथा गरीब वर्ग के लोगों के साथ विशेष व्यवहार किया जाय, जिससे वे उपलब्ध अवसरों का उपयोग करके अपने जीवन को उत्तम बना सकें तथा अगड़ों के समकक्ष आ सकें।(सिंह,2003)

इस प्रकार सामाजिक न्याय सभी के लिए समान अवसरों के साथ ही उन सभी व्यक्तियों के लिए, जो अन्य व्यक्तियों या वर्गों से विशेष रूप से आर्थिक—सामाजिक, राजनैतिक रूप से पिछड़े हुए हैं। उनके लिए विशेष—व्यवस्था की बात करता है, ताकि यह पिछड़ा वर्ग इन विशेष सुविधाओं का लाभ उठाकर विकसित वर्ग के समकक्ष आ सकें अर्थात् सामाजिक न्याय लोगों की जरूरतों पर बल देता है और इसी कारण जरूरतमंद लोगों को प्राथमिकता देने वाली नीति का समर्थन करता है। इस प्रकार सामाजिक न्याय का विचार जीवन को अर्थपूर्ण और जीने योग्य बनाने के लिए तथा पिछड़े वर्ग की पीड़ा को कम करने का एक गत्यात्मक उपाय है, जिसे पिछड़ा वर्ग इस अवसर का लाभ उठाकर गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।

सामाजिक न्याय के विचारकों का यह भी मानना है कि 'उत्पादन एक सामाजिक कार्य है' अतः सामाजिक सम्पत्ति का एक हिस्सा वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में लोगों में बँट जाना चाहिए। समाज में विषमताओं का अपना औचित्य होना चाहिए, किन्तु समाज में असमानताओं को न्यूनतम किया जाना चाहिए। इस प्रकार सामाजिक न्याय का उद्देश्य है कि 'समानता एवं न्याय' के आधार पर सामाजिक—व्यवस्था का निर्माण करना। यह सिद्धान्त एक संतोषजनक सीमा तक सामाजिक—राजनीतिक—आर्थिक समानता प्राप्त करने का लक्ष्य रखता है, जिसमें अगड़ों के साथ पिछड़ों को भी गरिमापूर्ण जीवन जीने का अवसर प्राप्त हो सके। लोगों को अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने को बेचना न पड़े। समाज में किसी प्रकार का भेदभाव न हो तथा योग्यता, क्षमता व सामाजिक हैसियत का निर्धारण हो एवं व्यापक भातृभाव समाज में उपस्थित हो। इस प्रकार सामाजिक न्याय सीमित, किन्तु महान अर्थों को समेटे हुए है।

उल्लेखनीय है कि सामाजिक न्याय की अवधारणा एक गत्यात्मक अवधारणा है, जो कि प्राचीनकाल से अब तक विभिन्न आयामों में प्रचलित रही है। मानव ने जब से समाज को स्थापित किया है तब से एक आदर्शपूर्ण तथा न्यायपूर्ण समाज की स्थापना उसका सर्वप्रथम लक्ष्य रहा है तथा इस दिशा में वह निरन्तर प्रयासरत रहा है तथा समाज में इस दिशा में प्रयास चिरकाल तक होता रहेगा। हम देखें कि भारतीय समाज में इसकी स्थिति प्राचीन काल से वर्तमान तक 'क्या' रही है तथा इसमें विकास तथा परिवर्तन किस स्तर पर हुए हैं?

भारतीय परम्परा में प्राचीन काल से ही समाज को एक न्यायपूर्ण तथा आदर्श समाज बनाने का प्रयास किया गया था, हालांकि भारतीय समाज प्राचीनकाल से ही वर्ण आधारित समाज रहा है। 'ऋग्वेद' के दसवें मण्डल में दिव्यपुरुष के अंगों से उत्पन्न हुए मनुष्यों के आधार पर 'वर्ण' का निर्धारण व्यक्त किया, किन्तु वैदिककाल में यह व्यवस्था केवल जन्म पर नहीं, बल्कि 'कर्म' पर आधारित थी। अपनी विशेषता के अनुसार कोई भी व्यक्ति किसी भी वर्ण को चुन सकता था। इस काल में पुरुषों तथा स्त्रियों की स्थिति तथा अधिकारों में भी समानता थी।

उत्तर वैदिककाल में वर्णव्यवस्था में जटिलता आयी तथा जाति—प्रथा प्रारम्भ हो गयी। अब वर्ण व्यवस्था कर्मनः नही वरन् जन्मनः आधारित हो गयी तथा महिलाओं की स्थिति भी पुरुषों की अपेक्षा हेय हो गयी है तथा उन्हे समाज अर्थ एवं राजनीतिक संबंधी अधिकारों से वंचित किया गया। इसके अतिरिक्त भी अनेक कुरीतियाँ समाज में अन्तःव्याप्त हुईं। इन्हीं सामाजिक कुरीतियों के प्रतिक्रियास्वरूप जैन व बौद्ध धर्म का उदय हुआ। इन धर्मों के प्रवर्तक महावीर स्वामी तथा महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेशों, शिक्षाओं आदि के माध्यम से समाज में व्याप्त इन बुराइयों को समाप्त करने का प्रयास किया। (रमैन्द्र, 2012)

महाकाव्ययुगीन समाज भी न्याय तथा धर्म पर आधारित था। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्तिगत अधिकारों को मान्यता प्राप्त हो गयी व सामाजिक व्यवस्था को ही राजधर्म कहा गया।

इसी प्रकार मौर्यकाल में 'कौटिल्य' ने भी न्याय की सुव्यवस्था को राज्य का प्राण माना है, जिसके बिना राज्य जीवित नहीं रह सकता है। उनके अनुसार न्याय का उद्देश्य राज्य की प्रजा के जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करना तथा उसके इस सार्वजनिक उद्देश्य की सिद्धि में, जो असामाजिक तत्व बाधा डाले उन्हे दण्डित करना है।

मध्यकाल में मुख्यतः विदेशी आक्रमणकारियों के आगमन काल में शंकर, रामानुज, कबीर, नानक आदि ने समाज में फैली असमानताओं को दूर करने का प्रयास किया।

अंग्रेजों के आगमन के समय भारतीय समाज में कुरीतियाँ अपने चरम पर थीं, किन्तु पाश्चात्य सामाजिक व्यवस्था तथा शिक्षा के सम्पर्क ने इन कुरीतियों के प्रति विरोध को उतना ही तीव्र कर दिया। इस काल में भी केशवचन्द्र सेन— ब्रह्म समाज, ज्योतिबा फूले— सत्य शोधक समाज, राम मोहन राय— ब्रह्म समाज, रामाबाई— शारदा सदन आदि के द्वारा समाज में फैली अन्यायपूर्ण व्यवस्था को खत्म करने के प्रयास जारी रहे।

स्वतंत्रता आन्दोलन के काल में महात्मा गाँधी व डा0 भीमराव अम्बेडकर के प्रयास समाज में न्याय स्थापित करने की दिशा में अविस्मरणीय है। गाँधी जी के विचारों में सामाजिक न्याय के प्रति दार्शनिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोण का समावेश मिलता है, किन्तु डा0 अम्बेडकर ने अपने सिद्धान्तों को मूलतः राजनीतिक व विधिक पृष्ठभूमि पर प्रतिपादित किया है, जिसका कारण भी धार्मिक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय समाज एक परम्परावादी एवं रूढ़िवादी समाज रहा है। इसके बावजूद इसमें प्रगतिशीलता के तत्व बीज रूप में अन्तःनिहित रहे हैं, क्योंकि इसमें व्याप्त कुरीतियों तथा कमियों को दूर करने के लिए जब भी सुधार—आन्दोलन चलाये गये। भारतीय जनमानस ने उदारतापूर्वक उसका समर्थन किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय राजनेताओं ने एक ऐसे राष्ट्र के निर्माण का प्रयास किया, जो कल्याणकारी हो तथा सभी नागरिकों को न्याय दिला सके, अतः उन्होंने 'संविधानसभा' को एक ऐसे संविधान के निर्माण को कहा, जो भारतीय समाज का सही दिशा—निर्देशन कर सके तथा सामाजिक न्याय के मानकों को मूर्त रूप प्रदान कर सके। पं० नेहरू ने संविधान सभा को चेतावनी दी थी कि यदि हम सामाजिक न्याय की समस्या का निदान नहीं ढूँढ सके तो हमारा यह कागजी संविधान निरुद्देश्य तथा निरर्थक होगा। संविधान सभा ने जो संविधान बनाया उसमें सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय दिलाने का भरसा दिलाया। न्याय का यह क्रम स्पष्ट करता है कि भारतीय संविधान सामाजिक न्याय को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानता है।

जी० ऑस्टिन के अनुसार— "भारतीय संविधान एक सामाजिक दस्तावेज है, जिसे अधिकांश प्रावधान सामाजिक न्याय की अवधारणा को अग्रसर करते हैं। सामाजिक न्याय का बीजकोष संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अध्यायों में स्पष्ट है। इन्हे भारतीय संविधान की आत्मा कहा जाता है। संविधान की प्रस्तावना भारतीय नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था तथा उपासना की स्वतंत्रता, हैसियत तथा अवसर की समानता, व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की एकता को सुनिश्चित करने वाले भ्रातृत्व को उपलब्ध कराने का दावा करता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना का यह भाग सामाजिक न्याय का संदेश देती है। भारतीय संविधान का भाग—3 सभी नागरिकों के लिए मौलिक अधिकारों की व्यवस्था करता है तथा राज्य को कुछ ऐसा करने से रोकता है, जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में बाधक हो।

संविधान का भाग—4 राज्य के नीति निर्देशक तत्वों से संबंधित है। ये सामाजिक कल्याण के लिए राज्य को सकारात्मक रूप से कुछ करने का निर्देश देते हैं तथापि ये सामाजिक न्याय की दिशा में युगान्तकारी है। इसके अतिरिक्त भारतीय संसद ने सामाजिक—न्याय के मार्ग में बाधाओं को दूर करने के लिए समय—समय पर संविधान में अनेक संशोधन किये हैं।

भारतीय न्यायपालिका ने भी सामाजिक न्याय की संकल्पना को साकार करने की दिशा में महत्वपूर्ण निर्देश दिये हैं। इसमें केशवानंद भारती प्रकरण, इन्दिरा साहनी बनाम यूनिन ऑफ इण्डिया ऐतिहासिक मामले हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय समाज प्राचीन काल से वर्तमान तक समाज में न्याय की स्थापना के लिए प्रयासरत् रहा है, जिसके काफी सुखद परिणाम हमारे सामने हैं, किन्तु मंजिलें

सिंह : सामाजिक न्याय की अवधारणा—एक परिचय

अभी दूर हैं तथा प्रयास को श्रेष्ठतम स्तर तक ले जाने की आवश्यकता है, जिसके लिए भारतीय समाजकृत संलग्न है।

REFERENCES

जाटव डी0आर0 (1993) *सामाजिक न्याय की अवधारणा*, जयपुर, समता साहित्य सदन पृ0-17

मिश्र, हृदय नारायण (2014) *सामाजिक राजनीतिक दर्शन के नये आयाम*, इलाहाबाद, शंख प्रकाशन, पृ0-37

श्रीवास्तव, जगदीश प्रसाद (2002) *समाज दर्शन की भूमिका*, वाराणसी, वि0वि0प्रकाशन, वाराणसी, पृ0-102

पाठक, राममूर्ति (2008) *सामाजिक राजनीतिक दर्शन की रूपरेखा*, इलाहाबाद, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0-248

सिंह, शिवभानु (2003) *समाज दर्शन का सर्वेक्षण*, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ0-250

रमेन्द्र (2012) *धर्मदर्शन: सामान्य एवं तुलनात्मक*, मोती लाल, पटना, बनारसी दास प्रकाशन पृ0-262

शर्मा ब्रज किशोर (2013) *भारत का संविधान: एक परिचय*, नई दिल्ली, लाइसेंस प्राइवेट लि0,